REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF)
VOLUME - 7 | ISSUE - 5 | FEBRUARY - 2018

संत दादूदयाल का समतामूलक समाज दर्शन

डॉ. नीलम सिंह
सहायक प्रवक्ता, हिंदी , सी.आर.एम.जाट महाविद्यालय , हिसार.

प्रस्तावना :

भक्तिकाव्य का प्रवृत्ति दर्शन समाज दर्शन का प्रमुख उपादान है, जो कर्मभरे जीवन का आग्रह करता है और जिसे अनेक प्रकार से परिभाषित किया गया है। स्वयं कवियों ने भी इसे जिया है अपने दैनिक कार्म निष्पादित करते हुए, उच्चतर मूल्यों की कल्पना से। भक्ति ने निवृत्ति के स्थान पर प्रवृत्ति का कर्मभरा मार्ग चुना और उसे परिभाषित किया। इस प्रवृत्तिमार्गी दर्शन से भक्तिकाव्य की सामाजिक विश्वसनीयता में वृद्धि हुई।

'हिन्दी भक्तिकाव्य में सुगुण–निर्गुण का द्वैत है, मराठी संतकाव्य में यह नहीं है। वहाँ टिप्पणी की गई है कि निर्गुण अधिक प्रगतिशील है और उसने सामान्य वर्ग को अपनी और आकृष्ट किया है– कबीर, नानक, रैदास, धर्मदास, दादू आदि।

दादू पंथ के प्रवर्तक संत दादूदयाल मुख्यतः धर्म सुधारक और समाज सुधारक थे। जाति, कुल देशकाल और परिस्थितियों से निरपेक्ष होकर नैतिक दायित्व का निर्वाह करना धर्म है। धर्माचार अथवा नैतिकता समाजपरक है और धर्मसाधना व्यक्तिनिष्ठ समकालीन समाज में आत्मशुद्धि के द्वारा समाज सुधार तत्कालीन संतों का साध्य था और साधन था भक्ति। साधक और साध्य का एकीकरण साधना के माध्यम से सभी संतों ने किया और यही तत्कालीन संत दादूदयाल ने भी किया।

मध्ययुग में अरूचि और संस्कार की प्रधानता थी। शासक और शासित, विजेता और विजित में बहुधा संधर्ष होता था, सामाजिक सामंजसय बिगड़ जाता थ। संतुलन बनाए रखने के लिए तत्कालीन सामजसुधारक संत समन्वय की ओर उन्मुख होते थे। भक्ति आंदोलन इसी दिशा में अग्रसर रहा है। इसी परम्परा में हम कबीर को देखते हैं, और उन्हीं की शिष्य परम्परा में दादूदयाल आते हैं। दोनों का लक्ष्य एक था लेकिन तरीका जुदा था। इसका मूल कारण था दोनों की स्वभावगत विशेषता।

दादूपंथियों में मान्यता है कि अठारह वर्ष की अवस्था में दादूदयाल को पुनः गुरू के दर्शन हुए और उन्हें प्रेरणा मिली कि जिस सत्य की प्राप्ति उन्हें हुई वह सत्य जनता को भी प्राप्त हो। इसी समय से दादूदयाल ने भगवद् चिंतन में अपना ध्यान केंद्रित किया और साधु संगति में सारा समय व्यतीत किया। इसी उद्देश्य से देशाटन किया।

संत दादूदयाल की विचारधारा कबीर से प्रभावित है। निर्गुण भक्त कवि होने पर भी उन्होंने ईश्वर के सगुण रूप को मान्यता दी है। इसी प्रकार भक्ति को उन्होंने सहज भाव से अंगीकार किया है, किसी मतवाद की उलझन में वे नहीं पड़े हैं।

कबीर की शिष्य परम्परा में आने के कारण यह संभव है। दूसरा, कबीर की तरह उनका संबंध भी तत्कालीन हिन्दू और मुसलमान दोनों समाजों से था।

'दादू तुलसीदास के समकालीन थे। वे कबीरदास के मार्ग के अनुयायी थे। उनकी उक्तियों में बहुत कुछ कबीरदास की छाया है, फिर भी वे वहीं नहीं थे जो कबीरदास थे। समाज में निचले स्तर से उनका भी आविर्भाव हुआ था, जन्मजात अवहेलना को लेकर इनका भी विकास हुआ

था, पर उस युग तक कबीर का प्रवर्तित निगुर्ण मतवाद काफी लोकप्रिय हो गया था। नीच कही जाने वाली जातियों में उत्पन्न महापुरूषों ने अपनी प्रतिभा और भगवन्निष्ठा के बल पर समाज के विरोध का भाव कम कर दिया था। दादू ने शायद इसीलिए परम्परा समागत उच्च–नीच विधान के लिए उत्तरदायी समझी जानेवाली जातियों पर उस तीव्रता के साथ आक्रमण नहीं किया, जिसके साथ कबीर ने किया था। इसके सिवा उनके स्वभाव में कबीर के मस्तानेवप के बदले विनय मिश्रित मधुरता अधिक थी। सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक रूढ़ियों और साधना संबंधी मिथ्याचारों पर आघात करते समय दादू कभी उग्र नहीं होते। अपनी बात कहते समय वे बहुत नम्र और प्रीत दिखते हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल स्पष्टतः मानते हैं कि कबीर का इनकी बानी में बहुत जगह नाम आया है और इसमें कोई संदेह नहीं है कि ये उन्हीं के मतानुयायी थे। ''इनकी बानी में भी वे ही प्रसंग है जो निर्गुण मार्गियों की बानियों में साधारणतः आया करते हैं, जैसे ईश्वर की व्यापकता, सतगुरू की महिमा, जाति–पाँति का निराकरण, हिंदू मुसलमान का अभेद, संसार की अनित्यता, आत्मबोध इत्यादि।

'वह मसीत यह देहरा, सतगुरू दिया दिखाई
भीतर सेवा बंदगी, बाहिर काहै जाइ।''

कबीर और तुलसी जैसी सामाजिक समन्वय की साधना संत दादूदयाल की बानी में भी मिलती है। डॉ0 रामकुमार वर्मा के मतानुसार, ''हिंदू–मुस्लिम का ऐक्य इन्होंने भी कबीर की भाँति करना चाहा है। दादू ने धर्म के प्रायः सभी अंगों पर प्रकाश डाला है। मूर्ति पूजा, जाति, आचार, तीर्थ–व्रत अवतार आदि पर दादू कबीर के पूर्णतः अनुयायी हैं।''

संत दादूदययाल का काव्य बेलवेडियर प्रेस से 'दादूदययाल की बानी' नाम से प्रकाशित हुआ है। दादूपंथी श्री मंगलदास स्वामी ने 'श्री दादूदयाल जी का बानी' जयपुर से छपवाई है। इनके दो शिष्यों संतदास और जगन्नाथदास ने इसकी बहुत से वाणियों का संग्रह तैयार किया था जिसका नाम 'हरडे वाणी' है।

इन रचनाओं में न केवल इनके सिद्धांत एवं साधनाओं का ही परिचय मिलता है, प्रत्युत उनके एक–एक शब्द से इनके उस संत हृदय का भी स्पष्ट पता चल जाता है जिसका क्रमिक विकास, इनके शुद्ध सात्विक जीवन के साधारण दैनिक व्यवहारों के बीच में ही हुआ होगा। अपनी नम्रता, क्षमशीलता एवं कोमल हृदयता के कारण ये केवल 'दादू' से दादूदयाल कहलाने लगे थे।

संत दादूदयाल के विचार में हमारे सामाजिक जीवन का मूल आधार करूणा और प्रेम है, परंतु ये दोनों सीखने से नहीं आते, इनके लिए अंहकार को मारना पड़ता है।

दादू सीष्यों प्रेम न पाइये, सीष्यों प्रीति न होइ,
सीष्यों दरद न ऊपजै, जब लग आप खोइ।

सांसारिक सफलता में भी अभिमान बाधक है। निरभिमानी होने पर मनुष्य सर्वरूप हो जाता है, फिर उसे परमेश्वर खोजना नहीं पड़ता, वही ईश्वर रूप हो जाता है–

दादू आपा जग लगै, तब लग दूजा होई,
जब यह आपा मिटि गया, तब पूजा नहीं कोई।

तत्कालीन समाज और अपनी भक्तिपरक प्रवृत्तियों के कारण सामाजिक समत्व को दादूदयाल सीधे परमेश्वर से जोड़ते हैं–

अलह राम छूटा भ्रम मोरा
हिंदू तुरक भेद कछु नाही, देषौ दरसन तोरा।

मन वचन कर्म की एकता पर ही इच्छा ज्ञान क्रिया की, समरसता बनती है, जो जीवन का मूल रहस्य है। मुक्ति के क्षेत्र में ही नहीं जीवन के सभी आयामों में इस समरसता का महत्त्व मान्य है। उपासना के संदर्भ में दादूदयाल कहते हैं–

'दादू मनसा वाचा कर्मना, हिरदै हरि का भाव
अलखि पुरिख आगे पड़ा, ताके त्रिभुवनराव।''

संत कवियों ने समाज में प्रचलित सभी विश्वासों को कर्म और वचन की कसौटी पर परखा। दादूयाल के मत में साधु की विशेषता यही है कि वह अवगुण और विकारों को त्याग देता है। उसका ज्ञान इतना दृढ़ एवं उचित होता है कि विष से भी अमृत निकालने की सामर्थ्य रखता है।

'हंस गियानी सो भला, अंतिर राखे एक
विष में अमृत काढ़ि लै, दादू बड़ा बबेक।'

संत कवियों ने तत्कालीन विश्रृंखल और विसंगत समाज को सुव्यवस्थित और संगठित स्वरूप प्रदान के लिए जो आदर्श प्रस्तुत किए उसमें सबसे मुख्य था समत्वभाव

'पूरन ब्रह्म विचारिये, सफल आत्मा एक।
काया के गुण देखिये, नाना अनेक।

जब तक हृदय में संशय और भ्रम रहते हैं, तब समष्टि का अभाव रहता है, जब दुविधा मिट जाए तब प्रत्येक प्रकार का भेदभाव समाप्त हो जाता है।

'दादू संसा आरसी, देखत दूजा होइ'
भरम गया दुविधा मिटी, तब दूसर नाही कोई।

संसार के सब प्राणियों में एक आत्मा की स्थिति को जाननेवाला ही साधु है, जो परायों में अपनों की पहचान करता है। यही समदृष्टि उसे इस मकान कार्य में सहायता करती है

'सब घटि एकै आतमा, जाने सो नीका
आपा पर में चीन्हि लै, दरसन है पीका।''

द्वैत–अद्वैत का सामाजिक–सांस्कृतिक आयाम जातीय सौमनस्य का आग्रह करता है जहाँ सब समान हैं। राम–रहीम एक हैं और भक्तिमार्ग में जाति–पाँति के लिए कोई स्थान नहीं है, सब एक ही परमज्योति से प्रकाश पाते हैं।

मनुष्य मात्र की एकता उनका आत्मदर्शन था। इस आत्मदर्शन से वे सामाजिक समरता को सुदृढ़ करना चाहते थे। सत्संग द्वारा सामाजिक एकता को जोड़ना इनका उद्देश्य था। उन्होंने मनुष्य को तात्विक दृष्टि से भेदभाव रहित बताकर जाति, वर्ण, सम्प्रदाय के भेदभाव को दूर किया। अतः संतकाव्य के सामाजिक साँस्कृतिक सौमनस्य की प्रांसगिकता सदैव बनी रहेगी।

भक्तिकाव्य की अद्धैतवादी–एकेश्वरवादी दृष्टि देवत्व को मनुष्य के रूप में संचरित करती है। इस प्रक्रिया में वह उस सामाजिक चेतना से सम्पन्न है जिसे लोकधर्म–मानवधर्म कहा गया। देवत्व के स्थान पर मनुष्य की केंद्रीयता भक्तिकाव्य का सबसे महत्वपूर्ण विकल्प है जिसे कवियों ने अपनी दृष्टि से रूपायित किया है।

कबीर, गुरूनानक आदि संतों ने बार–बार कहा कि भक्ति की जातिहीन व्यवसाि में सबका प्रवेश हैं। तर्क वही है कि सबका सृष्टा विधाता है, इसलिए पार्थक्य की रेखाएँ समाप्त होनी चाहिए। भक्तिकाव्य ने सामाजिक सौमनस्य का जो भाव प्रतिपादित किया उसकी प्रासंगिकता सुदीर्घ समय तक बनी रहेगी।

निर्गुण कविता अनेक कारणों के चलते कालांतर में पंथबद्ध होकर निष्प्रभावी भले ही बन गई हो, उसकी जो भी असंगतियाँ और सीमाएँ हों, तत्कालीन सामाजिक–साँस्कृतिक क्षितिज में उसका आविर्भाव और उसमें कबीर, नानक, दादू, नामदेव, रैदास जैसे संतों का योगदान एक बड़ी सामाजिक साँस्कृतिक उपलब्धि मानते हुए लिखा है, बड़ी उपलब्धि वह इसलिए है कि धर्म और भक्ति के क्षेत्र में ही सही, किंतु सामाजिक जीवन के बीच पहली बार वर्ग, वर्ण, जाति, नस्ल, धर्म और सम्द्रदाय के भेदों तथा बंधनों को अमान्य करते हुए मानव हृदय के एकात्म और भक्ति के संदर्भ में मानव मात्र की समानता को रेखांकित किया गया।

इसी संदर्भ में दादूदयाल का समतामूलक समाज दर्शन तत्कालीन ही नहीं समाकलीन सामाजिक–साँस्कृतिक स्थितियों में भी प्रासंगिक और सार्थक है और उनका अवदान रेखांकन योग्य है।

संदर्भ सूची

1. डॉ0 प्रेमशंकर–भक्तिकाव्य का समाज दर्शन, पृ0 214
2. डॉ0 त्रिलोकीनारायण दीक्षित– डॉ0 नगेन्द्र द्वारा सम्पादित हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ0 122।
3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी– हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ0 102
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 86
5. डॉ0 रामकुमार वर्मा– हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ0 274
6. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी– उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ0 420
7. परशुराम चतुर्वेदी– संतकाव्य (संग्रह), पृ0 252
8. दादू दयाल – परशुराम चतुर्वेदी संपादित –35, पृ0 234
9. वही 12, पृ0 232
10. परशुराम चतुर्वेदी– संतकाव्य, पृ0 255
11. दादू दयाल, परशुराम चतुर्वेदी संपादित–42, पृ0 47
12. दादू दयाल की बानी, भाग–1, पृ0 177
13. संत सुधासार, दादूदयाल, भाग–1, पृ0 481
14. दादू दयाल की बानी, भाग–1, पृ0 235
15. वही, पृ0 236
16. डॉ0 प्रेमशंकर– भक्तिकाव्य का समाज दर्शन, पृ0 216
17. डॉ0 शिवकुमार मिश्र–भक्ति आंदोलन और भक्तिकाव्य, पृ0 177